के समस्त प्राणी के कल्याण, उत्थान एवं विकास का निर्देश देते हैं, जिसके लिए पर्यावरण की सुरक्षा अनिवार्य है। इन दोनों सिद्धान्तों को आत्मपूर्णतावाद की श्रेणी में रखा जा सकता है। आत्मपूर्णतावाद मानव-व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास की बात करता है। यह तभी सम्भव है जब उसके व्यक्तित्व-विकास के लिए अनिवार्य तत्त्वों की उपलब्धि हो। ये तत्त्व पर्यावरण संरक्षण द्वारा ही प्राप्त होते हैं। आत्मपूर्णतावाद विवेक और इन्द्रियों की सन्तुष्टि समान रूप में करना चाहता है, और ऐसा होने पर पर्यावरण-असंतुलन असम्भव हो जाएगा। अध्यात्मवाद विवेक-इन्द्रिय को एक ही सत्ता में समन्वित कर पर्यावरण-संतुलन बनाए रखना चाहता है, और सर्वोदयवाद सर्वकल्याण के लिए पर्यावरण की आवश्यकता बतलाता है।

उपर्युक्त सभी नैतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त सामाजिक-राजनैतिक सिद्धान्त हैं, जिसमें समानता के अधिकार की बात की गयी है। समानता के अधिकार पर बल देने वाले विचार को **'समानता का सिद्धान्त'** कहा जाता है। यह सामाजिक-राजनैतिक सिद्धान्त के साथ-साथ नैतिक सिद्धान्त भी है, क्योंकि समानता एक नैतिक मूल्य भी है, केवल सामाजिक मूल्य नहीं है। इसी नैतिक-सामाजिक मूल्य की बात अध्यात्मवाद भी करता है। प्रत्येक व्यक्ति और मानवेतर जीवों को जीने का अधिकार है। जीने के लिए पर्यावरण-संतुलन आवश्यक है। परन्तु पर्यावरणीय संकट इस अधिकार का हनन करता है। इस अधिकार की सुरक्षा पर्यावरण-संरक्षण द्वारा ही सम्भव है। अध्यात्मवादी एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टि से विश्व के सभी चराचर पदार्थ समान हैं, क्योंकि ये सभी एक ही तात्त्विक सत्ता की देन हैं। भौतिक दृष्टिकोण से भी सभी पदार्थ एक ही मूलतत्त्व **'जड़'** से विकसित हुए हैं। अतएव समानता की दृष्टि से पशु-पक्षियों, वनस्पतियों और प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करने का अधिकार मनुष्य को नहीं है, बल्कि इन्हें बचाना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। अतएव समानता का सिद्धान्त पर्यावरण-संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वस्तुत: समानता का सिद्धान्त अध्यात्मवाद या सर्वोदयवाद का ही पर्याय है। उपर्युक्त सभी नैतिक सिद्धान्तों में कोई-न-कोई कमी रह गयी है, जिसकी भरपायी समानता का सिद्धान्त ही करता है। जब तक हम सभी मनुष्य एवं मानवेतर प्राणियों को समान रूप से नहीं देखेंगे, वैदिक ऋषियों की दिव्य दृष्टि को नहीं अपनायेंगे, तब तक पर्यावरण-संरक्षण के लिए हम अक्षम होंगे, और कई असाध्य बीमारियों से जूझते रहेंगे।

संदर्भ -

1) अरस्तू, पॉलिटिक्स, 1.8.
2) टॉमस एक्विनस, सुम्मा कन्ट्रा जेन्टाइल्स, 3.2.112.
3) बाइबिल, जेनेसिस, 1.27-28.
4) काण्ट, लेक्चर्स ऑन एथिक्स, स्टैनपफोर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एथिक्स (एन्वारनमेन्टल एथिक्स), पृ. 2.
5) पीटर सिंगर, प्राक्टिकल एथिक्स, द्वितीय संस्करण, पृ. 110-134.
6) इन्टरनेट एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एथिक्स (एन्वारनमेन्टल एथिक्स), पृ.2.
7) वही, पृ.-3.
8) जेम्स पिफशर, एन्वारनमेन्टल एथिक्स, वाल्यूम - 5.
9) इन्टरनेट एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एथिक्स (एन्वारनमेन्टल एथिक्स), पृ.-3.
10) स्टैनपफोर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एथिक्स (एन्वारनमेन्टल एथिक्स), पृ.-10.
11) वही.
12) वही, पृ.-11.
13) वही.
14) स्टैनपफोर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एथिक्स (एन्वारनमेन्टल एथिक्स), पृ.-11.
15) अथर्ववेद, भूमिसूक्त, 12.1.1-2.
16) वही, 1.2.1.3-4.
17) ऋग्वेद, 1.1.9.119.
18) वही, 1.2.22.16.
19) यजुर्वेद 1.13

अत्याधुनिक विचार इसी नैतिकता को पर्यावरणीय दायित्व का नैतिक आधार मानता है। यह नैतिकता या नैतिक मापदण्ड मानव-कर्मों की अभिवृत्ति और औचित्य दोनों को अपृथक मानता है। अभिवृत्ति का तात्पर्य है प्रेरणा, जिसके द्वारा मनुष्य कोई भी कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। परन्तु यह प्रेरणा उचित कार्य के लिए ही होना चाहिए। अतएव मूल्य-नैतिकता मनुष्य की क्रियाओं का आधार प्रेरणा और औचित्य को स्वीकारती है। पर्यावरण-संरक्षण का नैतिक आधार भी ये दोनों तत्त्व हैं। मूल्य-नैतिकता मनुष्य को आनन्दपूर्वक जीने का तरीका भी बतलाती है। जीने का तरीका ऐसा होना चाहिए जिसमें दया, करुणा, साहस, उदारता जैसे सद्‌गुण पाए जाएँ। अरस्तू और कन्फ्रयूसियस ने भी सद्‌गुण अपनाने की सलाह दी है। वर्तमान समय में ओ' नील एवं बैरी ने भी यही सलाह दी है। इन सद्‌गुणों, जिनमें मित्रता, प्रेम, सम्मान आदि भी निहित हैं, को अपनाने से ही पर्यावरण की संरक्षा और सुरक्षा हो पाती है। प्रकृति (भूमि) में पाए जाने वाले सभी सजीव-निर्जीव वस्तुएँ मानव-मित्र ही हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि - "हमारी जिस भूमि के मनुष्यों के बीच आपस में अध्किाधिक सामंजस्य और एकत्व की भावना है, जो हमारी मातृभूमि रोगनाशक औषधियों को धारण करती है, वह हमारी कामना-पूर्ति और यशोवृद्धि का साधन बने।"[15]

इन शब्दों में स्पष्टत: मनुष्य एवं मानवेतर प्राणियों तथा प्राकृतिक वस्तुओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने की बात की गयी है। यह सामंजस्य पर्यावरण-संरक्षण के लिए आवश्यक है। तभी तो वैदिक ऋषियों ने कहा है कि - "हमारी जिस मातृभूमि में सागर, महासागर, नदी, नहर, झील-तालाब, कुएँ आदि में जल हो, जहाँ सभी तरह के अन्न, फल, साग आदि अधिक-से-अधिक मात्रा में पैदा होते हैं, जिसके सभी प्राणी सुखी हैं, जिसमें किसान, शिल्पकार और उद्यमी व्यक्ति संगठित हैं, इस प्रकार की हमारी धरती हमें श्रेष्ठ भोग्य पदार्थ तथा ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो। हमारी जिस भूमि में चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ धन-गेहूँ आदि पैदा करती हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार से प्राणधारियों और वृक्ष-वनस्पतियों का पालन-पोषण और संरक्षण करती हैं, वह मातृभूमि हमें गौ आदि पशु तथा अन्न आदि प्रदान करने वाली हों।"[16] ये उद्‌गार भूमि-नैतिकता की समग्रता का ही संदेश देते हैं, अर्थात् अथर्ववेद के ऋषि ने बहुत पहले ही अप्रत्यक्षत: भूमि-नैतिक समग्रवाद के साथ-साथ मूल्य-नैतिकता को भी स्वीकृति दी है। उक्त पंक्तियों में स्पष्ट संदेश है कि हम जिस धरती पर रहते हैं, वह जल-संसाधन से भरा है (पर आज इसकी कमी हो गयी है)। इसी संसाधन द्वारा अन्न, साग-सब्जियाँ, दलहन, तेलहन आदि उपजायी जाती हैं। परिश्रमी किसान और उद्यमी व्यापारी इन वस्तुओं का उत्पादन और वितरण ठीक ढंग से कर पाता है। खेती के लिए बैल-जैसे पशुओं की आवश्यकता है, जिनका स्थान आज ट्रेक्टर और अन्य अत्याधुनिक प्रसाधन ने ले लिया है। विभिन्न पेड़-पौधों द्वारा फलादि का उत्पादन होता है। वनस्पतियों से खाद्य पदार्थ तथा औषधियों का निर्माण होता है। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण प्रकृति और उसके संसाधन मानवोपयोगी हैं। अतएव उनका संरक्षण आवश्यक है। ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं कि - "सब मनुष्यों को उचित है कि जो ऐश्वर्य का निमित्त, संसार का स्वामी, सर्वत्र व्यापक परमेश्वर है, उसकी प्रार्थना तथा उसके न्याय आदि गुणों की प्रशंसा पुरुषार्थ के साथ-साथ सब प्रकार से अति श्रेष्ठ विद्या, लक्ष्मी आदि पदार्थों की प्राप्ति हेतु करें और इनकी सदैव रक्षा करें।"[17] वैदिक ऋषि का यह कथन स्पष्ट करता है कि सम्पूर्ण विश्व का सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है। जल-थल आदि सभी उसके बनाए हुए हैं। इसलिए प्रकृति में पायी जाने वाली सभी वस्तुओं में एकत्व और सामंजस्य अवश्य होना चाहिए, क्योंकि इन्हीं वस्तुओं के द्वारा मानव-जीवन सुरक्षित रहता है। इनके द्वारा ज्ञान और धन की प्राप्ति होती है। अतएव प्रकृति की सभी वस्तुओं (सजीव-निर्जीव) की रक्षा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। अन्यत्र कहा गया है कि - "जिस सदा वर्तमान नित्य कारण (विष्णु) के चराचर संसार में परम ईश्वर पृथ्वी को लेकर सात लोकों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, विराट, परमाणु और प्रकृति) को जो सब पदार्थों को धारण करते हैं, उनके साथ विचरण करता है।"[18] अर्थात् समस्त प्रकृति या विश्व का आधार एकमात्र ईश्वर है। उसके द्वारा ही जल, अग्नि, वायु आदि का निर्माण होता है, और ये सभी मनुष्य के लिए आवश्यक हैं। अत: मनुष्य का कर्त्तव्य है इनकी रक्षा करना। इन तत्त्वों की रक्षा से ही पर्यावरण संतुलित ओर संरक्षित होता है। यजुर्वेद में भी ईश्वर को अग्नि और सूर्य की रचना करने वाला माना गया है जो संसार के सभी पदार्थों में घुल-मिलकर उनके रस और जल को छिन्न-भिन्न करते हैं। रस और जल वायुमण्डल में मिलकर पुन: पृथ्वी पर आकर सबको सुख देते और शुद्ध करते हैं।[19] इसी शुद्धता को बनाए रखने के लिए पर्यावरण-संरक्षण की आवश्यकता है जिसका परामर्श वैदिक ऋषियों ने भी दिया है। ईश्वर की रचना होने के कारण समस्त विश्व का स्वरूप ईश्वरीय या आध्यात्मिक है। इसी आध्यात्मिक स्वरूप को अद्वैत वेदान्त में **'मैं ब्रह्म हूँ'**, **'वह तुम हो'** आदि महावाक्यों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। वस्तुत: पर्यावरण-संरक्षण का उचित एवं संगत नैतिक आधार या सिद्धान्त अध्यात्मवाद ही है। वैदिक ऋषियों के साथ-साथ अद्वैत वेदान्तकार ने भी अध्यात्मवादी नैतिकता, जो भूमि-नैतिक समग्रवाद से उच्चतर है, और उच्चतर मूल्य-नैतिकता को स्वीकृति प्रदान करती है, को ही पर्यावरण के लिए संगत सिद्धान्त माना है।

बीसवीं शताब्दी के महान अध्यात्मिक-राजनैतिक चिन्तक महात्मा गाँधी ने सर्वोदय के सिद्धान्त को ही सर्वोत्तम नैतिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है। सर्वोदयवाद सभी व्यक्तियों के उत्थान की **बा** करता है। उपनिषद् के ऋषियों ने भी कहा है -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाभवेत्।।

इसी कथन में पर्यावरण-संरक्षण का उपदेश भी निहित है। वस्तुत: पर्यावरण-संतुलन और संरक्षण तभी हो सकता है जब संसार के सभी प्राणी एक-दूसरे को सुखी देखना चाहे और एक-दूसरे को सुखी बनाने का प्रयास करे। अध्यात्मवाद और सर्वोदयवाद दोनों ही विश्व

उपयोगितावाद तथ्यपरक है। सिंगर ने '**पशु-स्वतंत्रता**' पर भी बल दिया है और पशुओं को भी सुख-प्राप्ति के अधिकार का समर्थन किया है। पशुओं को न तो पालतू बनाना चाहिए, न ही उनका वध करना चाहिए। वस्तुत: आज पीटर सिंगर का उपयोगितावाद अपेक्षाकृत संगत प्रतीत होता है, खासकर पर्यावरण के संदर्भ में। स्वार्थमूलक सुखवाद हो या बेन्थम का आदर्शमूलक उपयोगितावाद या सिंगर का तथ्यमूलक उपयोगितावाद – इन सभी सिद्धान्तों में मानव-कर्म के लिए एक प्रयोजन निहित है। मनुष्य कोई भी कर्म तभी करता है, जब उस कर्म द्वारा उसका निजी लाभ होता है या उसके कर्म से अन्य मनुष्यों और मानवेतर जीवों को भी लाभ पहुँचता है। संक्षेप में, उसके कर्म की उपयोगिता होती है। इसलिए सभी प्रकार के सुखवाद को प्रयोजनवादी सिद्धान्त कहा जाता है।

परन्तु जर्मन दार्शनिक काण्ट ने मनुष्य को केवल अपने कर्त्तव्य के पालन करने का निर्देश दिया है। पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण का दायित्व '**कर्त्तव्य**' मात्र का ही बोध कराता है, न कि सुख या आनन्द जैसे किसी परिणाम का। काण्ट का यह विचार निष्प्रयोजनवादी या परातात्विक सिद्धान्त कहलाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार पर्यावरण-संरक्षण के लिए '**क्या करना चाहिए**' और '**क्या नहीं करना चाहिए**' जैसे '**निरपेक्ष आदेशों**' का पालन आवश्यक है। स्पष्ट है कि विधि-निषेध प्रतिज्ञप्तियों द्वारा पर्यावरण-संरक्षण का दायित्व मनुष्य के लिए निर्देशित किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, पशु-वध पर्यावरण के लिए हानिकारक है। इसलिए मनुष्य का दायित्व है कि वह पशुओं का वध नहीं करे। यह उसका कर्त्तव्य है, पर यह पशुओं का '**जीने का अधिकार**' है। पशु-जीवन के सुरक्षित रहने से पर्यावरण भी संरक्षित रहता है। टॉम रैगन ने पशुओं के जीने के अधिकार को उनका अन्तर्निहित (आन्तरिक) मूल्य माना है।[10] इस मूल्य का सम्मान करना आवश्यक है क्योंकि यह एक '**जीवन**' है और किसी भी मनुष्य को '**जीवन छीनने**' का अधिकार नहीं है। जिस तरह मनुष्य अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहता है, उसी प्रकार पशुओं के अस्तित्व को बचाए रखना मनुष्य का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य का पालन सुख या आनन्द के लिए नहीं, वरन् कर्त्तव्य के लिए होना चाहिए। पॉल टेलर ने पशुओं, पौधों एवं अन्य पार्थिव तत्त्वों का भी प्रयोजन माना है।[11] ये सभी मनुष्य के प्रयोजन के लिए होते हैं। इसलिए इन सबके अस्तित्व को बनाए रखना मनुष्य का कर्त्तव्य है। इनके अस्तित्व के बने रहने से ही पर्यावरण संतुलित रहता है। अतएव इन सबका भी आन्तरिक या निजी मूल्य है। इनके अन्तर्गत निहित मूल्य मानवोपयोगी हैं। अतएव ये सभी सम्मान के पात्र हैं। जिनका सम्मान होता है, उनका विनाश नहीं होना चाहिए। टेलर का यह विचार जैवकेन्द्रित (बायोसेन्ट्रिक) सिद्धान्त कहलाता है। यह काण्ट के निष्प्रयोजनवाद या परातात्त्विक सिद्धान्त का परिष्कृत रूप है। यह भी निष्प्रयोजनवाद ही है। सिंगर के समान टेलर ने भी तथ्यपरक बातें की हैं।

सुखवाद (परिणामवाद या उपयोगितावाद) तथा परातात्त्विक (जैवकेन्द्रित) सिद्धान्त एक-दूसरे के विरोधी और एकांगी हैं। यही कारण है कि रॉबिन एटफिल्ड और वार्नर ने पर्यावरण-नैतिकता का मापदण्ड सुख और कर्त्तव्य दोनों को स्वीकारा है।[12] यह ठीक है कि मनुष्य का कर्त्तव्य पशुओं, पेड़-पौधें, एवं अन्य भौतिक तत्त्वों तथा जीव-जन्तुओं के अस्तित्व को बनाए रखना है। लेकिन पशुओं एवं अन्य जीव-जन्तुओं में ऐसे भी जीव होते हैं जो मानव-जीवन के लिए हानिकारक होते हैं। साथ ही, पर्यावरण की दृष्टि से भी कतिपय जीव-जन्तु हानिकारक होते हैं, जैसे-सूअर आदि। अतएव ऐसे जीवों के अस्तित्व को समाप्त करना मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिए। मनुष्य का मूल स्वभाव स्वार्थी है। अत: वह कोई भी कार्य अपने हित के लिए ही करना चाहेगा। फलत: वह उन जीवों का वध नहीं करना चाहेगा जिनसे उसे लाभ मिलता है। परन्तु खाद्य पदार्थों के रूप में मुर्गा, बकरी आदि का उपयोग करने के लिए उनकी हत्या भी करता है। इस हत्या में उसका स्वार्थ ही निहित है। स्पष्ट है कि यह विचार '**जैवकेन्द्रित व्यक्तिवाद**' की स्थापना करता है, जिसमें मनुष्य सहित सभी जीवों के लिए उनके सुख और कर्त्तव्य दोनों के समन्वय को महत्त्व दिया गया है। विलियम और ओ' नील के अनुसार – "यह व्यक्तिवादी सिद्धान्त वर्णनात्मक है, परामर्शसमक नहीं।"[13] व्यक्ति को अपने सुख के लिए अमुक-अमुक कार्य करना चाहिए और पशु आदि जीवों की सुरक्षा भी करनी चाहिए, यदि वह उसके हित के लिए हो। इस प्रतिज्ञप्ति में तथ्यात्मक बातें की गयी हैं, भले ही '**चाहिए**' क्रिया आदर्शमूलक हो वस्तुत: सुख और कर्त्तव्य दोनों ही तथ्यात्मक पद हैं, यद्यपि आदर्शमूलक या परम्परागत नीतिशास्त्र इन पदों को नैतिक मानता है।

कैलिकट के अनुसार जैवकेन्द्रित व्यक्तिवाद सम्पूर्ण परिस्थितिकी के संरक्षण के लिए अनुचित या असंगत हैं। उनके शब्दों में – "वह वस्तु सही है जो जैविक समुदाय के सौन्दर्य, स्थायित्व एवं एकत्व की संरक्षा करने की ओर प्रवृत्त है, अन्यथा वह गलत है। उदाहरण के लिए, यदि उजला पूंछ वाला चितकबरा हिरण सम्पूर्ण जैव-कल्याण की रक्षा हेतु अनिवार्य है, तो उस हिरण के अस्तित्व को बचाए रखना चाहिए। इसी तरह समाज के अस्तित्व के लिए मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा भी आवश्यक है।"[14] स्पष्ट है कि कैलिकट ने '**भूमि-नैतिक समग्रवाद**' को ही पर्यावरण-संरक्षण का आधार माना है। टॉम रैगन ने इस समग्रवाद को '**पर्यावरणीय फासीवाद**' की संज्ञा दी है, क्योंकि यह पूर्णत: व्यक्तिकेन्द्रित है। हिरण के उदाहरण से स्पष्ट है कि मनुष्य के लिए जो उपयोगी है या मनुष्य की दृष्टि में पर्यावरण के लिए जो उपयोगी है, उसके ही अस्तित्व को बचाए रखना मनुष्य का कर्त्तव्य है। अन्तत: जैवकेन्द्रित व्यक्तिवाद मानवकेन्द्रित सिद्धान्त की ओर मुड़ जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उक्त सभी सिद्धान्तों में कुछ-न-कुछ कमियाँ हैं, चाहे वह सुखवाद हो या निष्प्रयोजनवाद या जैवकेन्द्रित व्यक्तिवाद या भूमि-नैतिक समग्रवाद। इन सिद्धान्तों में पायी जानेवाली कमियाँ '**मूल्य-नैतिकता**' द्वारा दूर की जाती हैं।

यद्यपि पशु-अधिकार सिद्धान्त अपेक्षाकृत संगत है, लेकिन यह मनुष्य और पशु-पक्षी तक ही सीमित है। परन्तु पर्यावरण का क्षेत्र विस्तृत है जिसके अन्तर्गत भौतिक तत्त्व एवं वनस्पति भी आते हैं। वस्तुत: मनुष्य का सम्बन्ध प्रकृति या भौतिक तत्त्व, वनस्पति तथा पशु-पक्षियों सभी से है। यही कारण है कि ल्योपाल्ड ने पर्यावरण से सम्बन्धित एक तीसरा सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। उस सिद्धान्त को पारिस्थितिकीय (परिस्थितिकेन्द्रित) सिद्धान्त कहा जाता है।

पारिस्थितिकीय सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार, जैसा कि ल्योपाल्ड ने कहा है - "भूमि-नैतिकता समुदाय की सीमा को विस्तृत करती है जिसके अन्तर्गत मिट्टी, जल, पौधे एवं पशुएँ आते हैं। संक्षेप में, जिसे पृथ्वी (जमीन) कही जाती है।"[6] इन शब्दों से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण प्रकृति या धरती ही पर्यावरणमय है। अतएव धरती पर रहने वाले सभी सजीव-निर्जीव पदार्थ पर्यावरण से ही आवृत्र हैं। ल्योपाल्ड की मान्यता है कि - नैतिकता का आरम्भिक विचार व्यक्तिकेन्द्रित था, बाद में वैयक्तिक और सामाजिक नैतिकता के रूप में इसका विस्तार हुआ। लेकिन आज की नैतिकता मनुष्य और पर्यावरण के बीच नियमित आचरण का है। इस आचरण को ही ***'भूमि-नैतिकता'*** की संज्ञा दी गयी है। भूमि के दो अर्थ हो सकते हैं - उत्पादन तथा राज्य।

उत्पादनार्थ :- मनुष्य को जीने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उनका उत्पादन जहाँ से होता है उसे **'भूमि'** कहते हैं। यहाँ भूमि का तात्पर्य **'खेत'** (कृषि-योग्य भूमि) से है।

राज्यार्थ:- यह भूमि का विस्तृत अर्थ है जिसके अनुसार भूमि वह है जहाँ मनुष्य अपनी नागरिकता प्राप्त करता है। राज्य ही वह संस्था है जो मनुष्य को नागरिकता प्रदान करता है। अतएव मनुष्य उस भूमि का नागरिक होता है जिसे राज्य या राष्ट्र कहते हैं।

भूमि के दूसरे अर्थ में ही पहला अर्थ निहित है, क्योंकि नागरिकता प्राप्त करने से ही मनुष्य की आवश्यकता पूरी नहीं होती वरन् आवश्यकता-पूर्ति के लिए उत्पादन भी करना पड़ता है। अतएव भूमि का व्यापक अर्थ है, जहाँ मनुष्य एक साधारण व्यक्ति होने के साथ-साथ एक राज्य या राष्ट्र का नागरिक होता है। नागरिक होने के नाते उसे अनेक अधिकार प्राप्त होते हैं। इस दृष्टिकोण से मनुष्य का पर्यावरण के साथ विस्तृत सम्बन्ध बनता है। फलत: पर्यावरण, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि होते हैं। इसलिए ल्योपाल्ड ने भूमि-नैतिकता को आदर्शमूलक नहीं मानकर परिणाम-आधारित माना है। भूमि द्वारा उत्पादन और नागरिकता की प्राप्ति इस नैतिकता का उद्देश्य है। अत: पारिस्थितिकीय सिद्धान्त जिस नैतिक मापदण्ड को स्वीकारता है, वह परिणामवाद (प्रचलित अर्थ में सुखवाद) कहलाता है। केवल **'परिणाम'** पर बल देना **'नैतिक मूल्य या आदर्श'** को अस्वीकारना है।

कैलिकट ने ल्योपाल्ड के विचार को मानव-मन में द्वन्द्व पैदा करने वाला बतलाया है।[7] यदि मनुष्य मात्र परिणाम के आधार पर उत्पादन और उपभोग करना चाहे, तो वह उन वस्तुओं का ही उत्पादन और उपभोग करेगा जिनसे अधिकाधिक मात्रा में सुख की प्राप्ति होगी। सुख-प्राप्ति के लिए ही मनुष्य कर्म करता है। यह परिणामवाद का सार है। लेकिन कर्म करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। इसलिए कैलिकट ने पारिस्थितिकीय सिद्धान्त को कर्त्तव्य-आधारित माना है।[8] उसके अनुसार मानव-कर्त्तव्य दो तरह के होते हैं — मानवकेन्द्रित एवं पर्यावरणकेन्द्रित इन दो कर्त्तव्यों में प्राथमिकता पर्यावरणकेन्द्रित कर्त्तव्य को मिलनी चाहिए। परन्तु हेफरनॉन की मानें तो मानवकेन्द्रित कर्त्तव्य पर्यावरणकेन्द्रित कर्त्तव्य पर हावी हो जाता है।[9] अतएव इन दो कर्त्तव्यों के बीच संघर्ष होता है जिसका समाधान ल्योपाल्ड नहीं कर पाता है। फिर भी, पारिस्थितिकीय सिद्धान्त पर्यावरण की क्षतिपूर्ति के लिए मनुष्य को अवश्य बाध्य करता है। वस्तुत: मनुष्य को अपने स्वार्थ के लिए ही पर्यावरण की संरक्षा करनी पड़ती है ताकि उसके जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और उसका स्वास्थ्य सदैव अनुकूल रहे। इसलिए उक्त दोनों कर्त्तव्यों में संघर्ष नहीं, समन्वय की आवश्यकता है। वस्तुत: पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का नैतिक आधार दोनों कर्त्तव्य हैं।

स्पष्ट है कि ल्योपाल्ड का पारिस्थितिकीय सिद्धान्त मनुष्य के स्वार्थपूर्ण कर्त्तव्य या नि:स्वार्थ कर्त्तव्य का निर्धारण करता है। स्वार्थपूर्ण कर्त्तव्य का तात्पर्य है कि मनुष्य स्वयं अपने हित के लिए प्रकृति का उपभोग करता है। नि:स्वार्थ कर्त्तव्य का अर्थ है कि मनुष्य अन्य प्राणियों के हित को ध्यान में रखकर प्रकृति का उपभोग करता है। दोनों ही हालत में परिणामवाद (सुखवाद) का ही प्रतिपादन होता है, क्योंकि यहाँ सुख ही सर्वोपरि है। सुख एक मूल्य है जो वस्तुनिष्ठ नहीं होता है, बल्कि आत्मनिष्ठ होता है। इसलिए यह आन्तरिक मूल्य कहलाता है। एक कवि और एक संत का सुख, एक शराबी और एक बलात्कारी के सुख से भिन्न होता है। एक का सुख उत्कृष्ट हैं, तो दूसरे का निकृष्ट। निकृष्ट सुख स्वार्थमूलक है, उत्कृष्ट सुख परार्थमूलक है। अत: परिणामवाद या सुखवाद के दो रूप हैं - स्वार्थमूलक सुखवाद एवं परार्थमूलक सुखवाद।

स्वार्थमूलक सुखवाद के अनुसार मनुष्य के लिए वही कार्य करना उचित है, जिससे उसका अपना हित सधता हो। इसी सुखवाद के कारण आज पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हुई है। परार्थमूलक सुखवाद मनुष्य के साथ-साथ अन्य प्राणियों के हित को भी ध्यान में रखने की सलाह देता है। पर्यावरण के संरक्षण का आधर यही सुखवाद है। बेन्थम और पीटर सिंगर ने (पर्यावरण के संदर्भ में) परार्थमूलक सुखवाद का प्रतिपादन किया है। परार्थमूलक सुखवाद का पर्याय उपयोगितावाद है। बेन्थम का उपयोगितावाद आदर्शमूलक है, जबकि सिंगर का

नैतिक सिद्धान्त एवं पर्यावरण

डॉ. एन.पी. तिवारी, दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

आज पर्यावरण वैश्विक समस्या बनकर उभरा है, जिसका कुपरिणाम मनुष्य-जीवन को प्रभावित कर रहा है। मानव-जीवन के विभिन्न आयाम हैं - अध्यात्म, धर्म, नीति, समाज, राजनीति, अर्थ, मन इत्यादि। पर्यावरण की समस्या ने इन सभी आयामों को प्रभावित किया है जिनमें स्वास्थ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज कई तरह की असाध्य बीमारियाँ नये-नये रूपों में उभर रही हैं। यह भी पर्यावरण-प्रदूषण का ही परिणाम है। आखिर आज का मनुष्य प्रदूषण से घिरकर अपना अस्तित्व बचा पाएगा या नहीं - यह एक गंभीर समस्या है। इस समस्या का समाधान ढूँढ़ने के पूर्व उसके कारणों की खोज करना आवश्यक है। उस खोज का उत्तर ही नैतिक सिद्धान्त है। प्रस्तुत-पत्र का विषय उन नैतिक सिद्धान्तों को पर्यावरण के सन्दर्भ में विवेचित करना है।

मेरी दृष्टि में, मुख्यत: दो प्रमुख नैतिक सिद्धान्त हैं — प्रयोजनवाद (उपयोगितावाद) तथा निष्प्रयोजनवाद। इनके अतिरिक्त, समानता का सिद्धान्त, सर्वोदयवाद एवं अध्यात्मवाद को भी प्रमुख नैतिक सिद्धान्त माना जा सकता है। इन सिद्धान्तों की विवेचना के पूर्व तीन अन्य सिद्धान्तों का उल्लेख आवश्यक है जिनका सम्बन्ध पर्यावरण से है। वे सिद्धान्त हैं — मानवकेन्द्रित सिद्धान्त, पशु-अधिकार सिद्धान्त तथा पारिस्थितिकीय (परिस्थितिकेन्द्रित) सिद्धान्त।

मानवकेन्द्रित सिद्धान्त

यह सिद्धान्त मनुष्य को पर्यावरण के प्रति पूर्ण उत्तरदायी मानता है। चूँकि पर्यावरण केवल मनुष्य के लिए ही उपयोगी होता है, इसलिए पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण मनुष्य ही कर पाता है। इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थकों में अरस्तू और एक्विनस अग्रगणी हैं। अरस्तू का मानना है कि - "प्रकृति ने सभी चीजों को मानव के लिए बनाया है, और प्रकृति में प्राप्त मानवेतर वस्तुओं का मात्रा साधन-मूल्य है।"[1] एक्विनस ने भी कहा है कि - "मनुष्य जैसा चाहे, पशु-पक्षियों के साथ वैसा व्यवहार करे। यदि उसकी इच्छा हो, तो उसका वध कर सकता है या उसे पालतू बना सकता है। मनुष्य का किसी भी तरह का व्यवहार मानवेतर प्राणियों के लिए न्याय है।"[2] ईसाई धर्मग्रन्थ बाइबिल में भी एक जगह कहा गया है कि - "ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है, और उसे समुद्र के जल में रहने वाली मछलियों तथा आकाश में उड़ने वालों चीलों एवं पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले सभी पदार्थों पर अधिकार प्रदान किया है।"[3] तात्पर्य है कि संसार की सभी वस्तुएँ, चाहे सजीव हो या निर्जीव, मानव-उपभोग और मानव-उपयोग के लिए ही बनी हैं। स्पष्ट है कि मानवकेन्द्रित सिद्धान्त मनुष्य के वर्चस्व को स्वीकारता है।

परन्तु यह एकांगी सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का भावार्थ है कि मनुष्य अपने हित और सुख के लिए मानवेतर प्राणियों तथा निर्जीव वस्तुओं का दोहन करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्रता है। मनुष्य की इस स्वतंत्रता ने पर्यावरण की समस्या उत्पन्न की है। फलत: प्रकृति प्रदूषित एवं असंतुलित पर्यावरण का शिकार हो गयी है। काण्ट का मानना है कि यह सिद्धान्त मनुष्य को क्रूरता प्रदान करता है - "एक कुत्ता के प्रति क्रूर व्यवहार मनुष्य को मनुष्य के प्रति क्रूर बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है।"[4] इतना ही नहीं, यह सिद्धान्त पृथ्वी के अन्य प्राणियों एवं वस्तुओं पर मनुष्य की कल्पित नैतिक प्राथमिकता या सर्वोच्चता को स्वीकारता है; अर्थात् संसार की सभी वस्तुएँ एवं अन्य सभी प्राणी मनुष्य के अधीन हैं। यह सिद्धान्त पर्यावरण तथा मानवेतर तत्त्वों के मूल्य-प्रतिपादन के लिए बौद्धिक तर्क की सम्भावना तलाशता है। सम्भावना निश्चितता का बोध नहीं कराती है। अतएव पर्यावरण की समस्या का समाधन यह सिद्धान्त नहीं कर पाता है, अपितु यह सिद्धान्त समस्या ही पैदा करता है। यही कारण है कि पीटर सिंगर ने पशु-अधिकार सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

पशु-अधिकार सिद्धान्त

सिंगर का मानना है कि - पशुओं को भी जीने का अधिकार है, और वे पर्यावरण के लिए भी उत्तरदायी हैं।[5] जंगलों में पशुओं का होना पर्यावरण के लिए लाभदायक है। अत: मनुष्य का दायित्व है कि वह पशुओं की हत्या नहीं करे। पशुओं के साथ-साथ पक्षियों को संरक्षित करना भी मनुष्य का दायित्व है। अतएव पशु-अधिकार सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य स्वेच्छाचार द्वारा पशु-पक्षियों का उपयेाग केवल अपने स्वार्थ एवं हित के लिए नहीं कर सकता है, वरन् उनके जीवन को सुरक्षित करने की दिशा में भी कार्य करना आवश्यक है। यह सिद्धान्त मानव के एकाधिकार का खण्डन करते हुए मनुष्य और पशु-पक्षियों के बीच परस्पर सहयोग एवं मैत्री की स्थापना करना चाहता है।

फिर भी, यह सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है। यह पर्यावरण से सीधे रूप में नहीं जुड़ता है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ता है। पशु-पक्षियों के पास ऐसी चेतना नहीं रहती कि वे पर्यावरण की रक्षा कर सके। परन्तु वे अपनी आदत और स्वभाव के अनुसार परोक्ष रूप से पर्यावरण की रक्षा करते हैं। इस तथ्य (पर्यावरण-संरक्षण) की प्रत्यक्ष चेतना मनुष्य के पास रहती है। फिर भी मनुष्य अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इतना क्रूर बन जाता है कि वह पशुओं-पक्षियों का वध करने लगता है। परिणामत: पशु-पक्षी पर्यावरण को, संतुलित करने में असमर्थ हो जाते हैं।